यह दशलक्षण पर्व का पहला दिन है न ? उत्तमक्षमा। उत्तमक्षमा आदि जो दश बोल हैं, वे चारित्र के भेद हैं। चारित्र मुख्य मोक्ष का कारण है, इसलिए चारित्र के दश प्रकार के धर्म (कहे गये हैं)। आत्मा का अनुभव, शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव हुआ हो और फिर उसमें चारित्र-लीनता हुई हो, उसे यह दश प्रकार का धर्म होता है। दश प्रकार के धर्म से सुख होता है, आनन्द होता है। आहाहा!

दश प्रकार का धर्म किसे कहते हैं ? कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आता हो। आहाहा! और इसमें अतीन्द्रिय आनन्द है, इससे अतीन्द्रिय आनन्द है, वह अतीन्द्रिय आनन्द सुखस्वरूप ही है। दश प्रकार का धर्म.... ऐसी बात है, भाई! उत्तम क्षमा कहा न ? सम्यक्त्वसहित की (बात है), सम्यक्त्व बिना जो कुछ है, वह कोई क्षमा नहीं है, वह तो रूँधी हुई कषाय होती है। आहाहा! ऊपर आया है, भाई! ३९३ श्लोक।

मुनिधर्म क्षमा आदि भावों से दश प्रकार का है। सौख्यसार.... उससे सुख होता है, आहाहा! यह चारित्रधर्म। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आता है, आहाहा! उसका नाम दश प्रकार का मुनि का धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, बापा! बहुत कठिन! है

इसमें ? सौख्यसार.... इससे सुख होता है और इसमें सुख है अथवा सुख का सार है। यह दश प्रकार का धर्म सुख का सार, आनन्द का सार उसमें है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन विशेष हो, उसका नाम यहाँ दश प्रकार का धर्म है। आहाहा! ऐसी व्याख्या.... ३९३ में है। अब ३९४, दशों में, हाँ! दशों प्रकार का धर्म.... आहाहा! यह दशलक्षणी पर्व, यह दश प्रकार का धर्म, चारित्र का भेद है। सम्यग्दर्शनसहित अनुभव और चारित्र हुआ हो, उसमें विशेष आनन्द आता है, उसे यहाँ दश प्रकार का धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शन में स्वरूप की दृष्टि होने से आनन्द का स्वाद आता है परन्तु थोड़ा है, आहाहा! और चारित्र में प्रचुर आनन्द है और उसमें क्षमादि हो.... आहाहा! उस क्षमा में तो महा आनन्द... आनन्द आता है, समझ में आया ? ऐसी बात है। इन दश धर्म में पहला उत्तम (क्षमा धर्म कहा)।

श्रोता : वीतरागभाव को धर्म कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वीतरागभाव ही यह दश प्रकार का धर्म है। यह तो उसके भेद बताये, वरना वीतरागभाव एक ही धर्म और वह चारित्र और वह दश प्रकार का धर्म, वीतरागभाव है — ऐसी बात है। यह दश प्रकार का धर्म वीतरागभाव है। आहाहा! बहुत ही राग का अभाव करके अतीन्द्रिय आनन्द के उग्र अनुभव में आनन्द आता है, उसे यहाँ दश प्रकार का धर्म कहा जाता है। यह तो क्षमा की और अमुक किया — ऐसी बात नहीं है। यह तो उत्तमक्षमा और उत्तममार्दव!

अन्तर में आत्मा आनन्द प्रभु के अन्तर अनुभव में अतीन्द्रिय स्वाद का आना, उसका नाम तो सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और चारित्र (अर्थात्) विशेष आनन्द का आना, उसका नाम चारित्र है। उसमें दश प्रकार के धर्म.... आहाहा! उस सुख के स्वाद में वृद्धि होती है.... आहाहा! उसका नाम (दश प्रकार का धर्म है)। बात ऐसी है।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खिमा णिम्मला होदि॥

(कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३९४)

जो कोई सन्त मुनि मनुष्य, तिर्यञ्च, अचेतन आदि उपसर्ग में होने पर भी तप्तायमान नहीं होते, क्रोध से तप्तायमान नहीं होते परन्तु आनन्द से उग्र आनन्द के स्वाद में आ जाये... आहाहा! उसे यहाँ दशलक्षणी पर्व में प्रथम उत्तमक्षमाधर्म कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? श्रावक को पञ्चम गुणस्थान में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों होते हैं। नियमसार में भक्ति आती है न? दर्शन — सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की श्रावक भक्ति करता है। वह भक्ति (रूप) परिणमन करता है। आहाहा! उसे यह दश प्रकार के धर्म का अंश है, मुनि को विशेष है, इसे आंशिक है परन्तु उस अंश में आनन्द का विशेष स्वाद आता है। सुखसार...! आहाहा!

शीशम की लकड़ी होती है न? शीशम.... शीशम। उसके अन्दर चिकना, कठिन सार होता है, ऐसे ही यह सुखसार! आहाहा! उत्तमक्षमा में अतीन्द्रिय आनन्द का सार आता है... आहाहा! उसको उत्तमक्षमाधर्म कहते हैं। उस मुनि को निर्मल क्षमा होती है, फिर दृष्टान्त दिया है। ऐसे-ऐसे मुनि हो गये हैं न? शान्त... शान्त... घानी में पिले.... आहाहा! इन पाण्डवों को लोहे के गहने बनाकर पहनाये.... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती थी। उपसर्ग और परीषह सहन करे, उसमें सहन (करना) उसे कहते हैं कि ज्ञाता-दृष्टा रहकर आनन्द का विशेषपना प्रगट हो, उसका नाम परीषह सहन किया कहा जाता है। आहाहा! ऐसी चीज है, भाई! वीतराग के मार्ग की पूरी लाईन में अन्तर है। यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह इस उत्तमक्षमा का कहा। अब चलता अधिकार।

यहाँ तक आया है, **साध्य जो निष्कर्म....** दशा। मोक्ष की दशा, वह साध्य है। **अभेद शुद्धस्वरूप, उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है....** आहाहा! निज भगवान का दर्शन करना, प्रतीति करना-ज्ञान करना, और रमणता (करना —) यह निष्कर्म अवस्था / मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है। आहाहा! **अन्यथा अनुपपत्ति है....** यह अनेकान्त है। वे अनेकान्त में ऐसा कहते हैं न? कि निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, यह अनेकान्त है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा.... आहाहा! अपने निश्चयदर्शन-ज्ञान और चारित्र से

निष्कर्म अवस्था साध्य होती है, अन्यथा नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। व्यवहार से या राग से या निमित्त से नहीं — अनेकान्त इसका नाम है कि स्व से होता है, पर से नहीं। अभी अनेकान्त को फुदड़ीवाद कर दिया है। आहाहा! निश्चय से भी होता है, व्यवहार से भी होता है, उपादान से भी होता है, निमित्त से भी होता है, यह तो फुदड़ीवाद है, एकान्त मत-मिथ्या है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! है?

इसी प्रकार उपपत्ति है, अन्यथा अनुपपत्ति है.... दूसरे प्रकार मुक्ति की अवस्था की उत्पत्ति होती नहीं है। आहाहा! अपने भगवान आत्मा (की) अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि, ज्ञान, और रमणता करना, यह एक निष्कर्म अवस्था की प्राप्ति का उपाय है। आहाहा! दूसरा कोई उपाय नहीं है। दो मोक्षमार्ग कहते हैं, वह तो कथन की शैली है, आहाहा! मोक्षमार्ग तो यह एक ही है, आहाहा! भाई! यह तो जिसे भव की थकान लगी हो, भव की पीड़ा (लगी हो कि) कहाँ जाऊँगा? आहाहा! (उसके लिए बात है।) शरीर में एक पीड़ा आती है तो सहन नहीं होती, आहाहा! शरीर में रहकर प्रभु! अन्दर तेरा काम करना है। मैं तो आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यघन (हूँ), उसकी प्रतीति में आनन्द आना, उसका ज्ञान करने में आनन्द आना, उसमें स्थिरता करने में आनन्द आना.... आहाहा! ऐसा मार्ग है। **दूसरे प्रकार से नहीं होती....** है न? **साध्य की सिद्धि इसी प्रकार होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती।** है? आहाहा!

(श्रोताओं से) इस दरवाजे के पास से हट जाओ। ऐसा क्या, यह, ठेठ पीछे से आते है और सामने बैठते हैं; हट जाओ या बाहर। बाद में आते हैं और सामने बैठना है, आहाहा!

अब, **(इसी बात को विशेष समझाते हैं —)** है न? **जब आत्मा को, अनुभव में आने पर....** क्या (कहते हैं)? अनेक पर्याय में राग-द्वेष और विकल्प (होते हैं)। आहाहा! **जब आत्मा को अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप भेदभावों....** अनुभव अर्थात् यहाँ आनन्द के अनुभव की बात नहीं है। राग और पुण्य-पाप, यह अनेक प्रकार के (भाव) जो वेदन में — अनुभव में आते हैं। **अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ मिश्रितता होने पर भी....** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के साथ यह पुण्य और पाप के असंख्य प्रकार के (भाव) साथ में मिश्रितपना अनादि से हो गया है, (ऐसा) माना है। आहाहा! है?

मिश्रितता होने पर भी, सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से..... आहाहा! अन्तर में राग से भिन्न करने में प्रवीणता.... राग, वह बन्ध का लक्षण है; भगवान का लक्षण ज्ञान है। उस ज्ञान से राग को भिन्न करके.... आहाहा! ऐसी बात है। पर्याय में पुण्य और पाप के अनेक विकार अनुभव में आने पर भी, मिश्रितता होने पर भी, वस्तु तो वस्तुरूप है। राग की मिश्रितता मानी है, समझ में आया? आहाहा! राग और आत्मा की एक मिश्रितदशा होने पर भी.... आहाहा! **सर्व प्रकार से भेदज्ञान.....** देखो! सर्व प्रकार से, एक अंश भी राग का अपने में नहीं है — ऐसे सर्व प्रकार से भेदज्ञान.... आहाहा! अन्तर में झुकने से राग से भिन्न हो जाता है — ऐसी बातें अब।

(सर्व प्रकार से) भेदज्ञान में प्रवीणता से.... सर्व प्रकार से, एक अंश भी राग मेरा नहीं है। आहाहा! **जो यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ....** यह जानने का अनुभव होता है, वह मैं हूँ; राग मैं नहीं हूँ। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो; गुण-गुणी के भेद का राग हो, परन्तु राग से आत्मा को मिश्रित मान लिया है, तो उसे भेदज्ञान करके.... आहाहा! रागभाव से भगवान आत्मा का भेदज्ञान करने से, भिन्नता करने से, सर्व प्रकार से भिन्नता करने से.... आहाहा! यह क्रिया.... समझ में आया?

यह अनुभूति है सो ही.... भेदज्ञान करने से जो ज्ञान का अनुभव रहा, वह मैं हूँ। है? **यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ — ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ....** आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ... आहाहा! भगवान आत्मा, राग से मिश्रित अवस्था में होने पर भी, भिन्न करने की — भेदज्ञान की कला से, सर्व प्रकार से भेदज्ञान करने से एक ज्ञानरूप रहा, वह मैं हूँ। आहाहा! ऐसी बात है। जिसे कल्याण करना हो, उसे यह मार्ग है, भाई! बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ.... यह जाननहार आत्मा — ऐसी अनुभूति सो मैं! राग की मिश्रितता होने पर भी सर्व प्रकार से भेदज्ञान से भिन्न करने पर जो ज्ञान है, सो मैं हूँ, अनुभूति वह आत्मज्ञान। आहाहा! अरे....! ऐसी बातें। **प्राप्त होता हुआ इस आत्मा को जैसा जाना है, वैसा ही है। इस प्रकार की प्रतीति....** जानने में आया कि यह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है, आनन्दस्वरूपी प्रभु है। इस प्रकार ज्ञान में भेदज्ञान से

अनुभूति-ज्ञान की अनुभूति, वह मैं हूँ — ऐसा जाना, ऐसी ही प्रतीति — इस प्रकार की प्रतीति हुई। आहाहा!

प्रतीति जिसका लक्षण है ऐसा, श्रद्धान उदित होता है.... आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। अरे....! राग के भाग से अन्दर में भगवान को भिन्न करके जो ज्ञान का अनुभव रहा, वह मैं हूँ और वह आत्मज्ञान है। आहाहा! उस ज्ञान में ऐसा आत्मा ज्ञात हुआ, ऐसी ही प्रतीति आयी। आत्मा का ज्ञान हुआ, वैसी ही प्रतीति हुई कि यह आत्मा! आहाहा! ऐसी बात....। **ऐसा श्रद्धान उदित होता है...।**

तब समस्त अन्य भावों का भेद होने से.... जब राग से, पुण्य के विकल्प से ज्ञानस्वरूपी भगवान भिन्न होने से, भिन्न का ज्ञान हुआ, और भिन्न की प्रतीति हुई। यह जानने में आया, वही आत्मा — ऐसी प्रतीति हुई। फिर अन्य भावों का भेद होने से... **समस्त अन्य भावों....** आहाहा! गुण-गुणी का विकल्प / भेद उठता है, उससे भी भेद करके.... आहाहा! **समस्त अन्य भावों का भेद होने से निःशंक स्थिर होने में समर्थ....** होता है। आहाहा! स्वरूप में निःशंकरूप से स्थिर होने से चारित्र होता है।

राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप है — ऐसी अनुभूति हुई, वह आत्मज्ञान; और उस आत्मज्ञान में जो आत्मा ज्ञात हुआ, वैसी प्रतीति हुई। प्रतीति होने के बाद अन्यभावों से, रागादि से भिन्न होकर (स्थिर होने में समर्थ हुआ) है? **निःशंक स्थिर होने में....** स्वरूप में निःशंकरूप से स्थिर होने से **आत्मा का आचरण उदय....** होता है। यह आत्मा का आचरण....। राग से भिन्न श्रद्धा, ज्ञान करने के बाद और फिर राग से भिन्न होकर स्वरूप में स्थिर होना, निःशंकरूप से (स्थिर होना कि) मैं यही हूँ। राग और दया, दान का विकल्प है, वह मैं नहीं। आहाहा! काम बहुत (कठिन है)। शास्त्र का जो परलक्ष्यी ज्ञान है, वह भी मैं नहीं हूँ क्योंकि उसमें आत्मज्ञान नहीं हुआ। आहाहा! आत्मज्ञान अर्थात् जो आत्मा है, उसका ज्ञान। राग से भिन्न पड़कर (हुआ) आत्मज्ञान और ऐसी प्रतीति (होना कि) यह आत्मा... ज्ञान में आया ऐसा 'यह आत्मा' ....ऐसी प्रतीति और समस्त अन्य भावों से भिन्न पड़कर निःशंकरूप से स्थिर होने की सामर्थ्य प्रगट हुई, आहाहा! रागादि मैं नहीं और मेरी चीज में निःशंकरूप से स्थिर होना, आहाहा! (तब) **आत्मा का**

आचरण उदय.... होता है। तब आत्मा का आचरण (उदय होता है)। भगवान आत्मा में लीन होता है; आचरण अर्थात् स्वरूप का आचरण होता है — यह आचरण का उदय अर्थात् चारित्र (प्रगट) हुआ। आहाहा! ऐसी बात है।

आत्मा को साधता है। इस प्रकार अनुभूति — ज्ञान, वह मैं; और उस ज्ञान में आत्मा ज्ञात हुआ — ऐसी प्रतीति हुई, तब समस्त अन्य भावों से भिन्न होकर नि:शंकरूप से स्वरूप में स्थिर होने का आचरण — आत्म-आचरण प्रगट हुआ। इस प्रकार आत्मा की सिद्धि है; इस प्रकार **आत्मा को साधता है।** आहाहा! **ऐसे साध्य आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है।** इस प्रकार साध्य जो निष्कर्मदशा — मोक्ष की सिद्धि इस प्रकार है, दूसरे प्रकार से नहीं है। आहाहा! थोड़े में भी कितना भर दिया है!

राग / विकल्प और भगवान / वीतरागस्वरूप — दोनों का मानों मिश्रितपना हो गया हो, ऐसे मिश्रितपने में राग से भिन्न पड़कर अनुभूति — यह जाननेवाला.... जाननेवाला ही मैं — ऐसा ज्ञान हुआ, वह आत्मज्ञान हुआ। आहाहा! समझ में आया? लो, यह दशलक्षण पर्व का पहला दिन। आहाहा!

श्रोता : सुख का पहला दिन, सुख प्राप्त करने का पहला दिन!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुख, सुख, सुख कहा था न कल, भाई ने वहाँ, वहाँ सूरतवाले आये न! आहाहा!

भगवान सुख का भण्डार है न, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, है न! — उसे राग से भिन्न करके ज्ञान में अतीन्द्रिय सागर का ज्ञान — आत्मज्ञान हुआ। आहाहा! और जैसा जानने में आया, वैसी प्रतीति हुई और समस्त राग से भिन्न पड़कर नि:शंकरूप से आत्म-आचरण करने का पुरुषार्थ हुआ। आहाहा! यह चारित्र....। सूक्ष्म बात, बापू! अरेरे...! अनन्त काल से भगवान को भूलकर भ्रम में अनादि से पड़ा है, वह दु:ख के पन्थ में है। आहाहा! इस प्रकार सिद्धदशा की उपपत्ति है। साध्य सिद्ध!

ऐसा होने पर भी.... आहाहा! अब आया... यह शरीर, पैसा, और प्रतिष्ठा यह श्मशान की हड्डियों की फासफूस है। आहाहा! जिसे इसकी विस्मयता लगती है, उसे आत्मा की विस्मयता नहीं लगती। जिसे आत्मा के अतिरिक्त बाह्य पदार्थ की अतिशयता,

विशेषता भासित होती है, उसे आत्मा की भिन्नता नहीं भासित होती। आहाहा! समझ में आया कुछ? ऐसा होने पर भी....।

परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा.... आहाहा! ज्ञान में अनुभवस्वरूप भगवान आत्मा, आहाहा! **आबाल-गोपाल....** आबाल अर्थात् बालक से लेकर वृद्ध; गोपाल अर्थात् वृद्ध, बालक से लेकर वृद्ध को — सबको; आहाहा! अनुभव में **सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी....** आहाहा! उसकी पर्याय में, ज्ञान की पर्याय है, उसका स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, उस कारण पर्याय में स्वस्वरूप जानने में आता है। पर्याय में द्रव्यस्वरूप भगवान जानने में आता है, तथापि अज्ञानी को पर तरफ के बन्ध के लक्ष्य होने से, राग के प्रेम के कारण वह अन्तर में देख नहीं सकता। मेरी वस्तु, मैं आत्मा पर्याय में जानने में आता है — ऐसा देख नहीं सकता।

फिर से, आहाहा! ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, उस पर्याय का स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है, चाहे तो अज्ञान हो या ज्ञान हो! उस पर्याय में आत्मा ही जानने में आता है, क्योंकि स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से ज्ञान की पर्याय में स्ववस्तु है, वही जानने में, अनुभव में आ रही है। पर्याय में द्रव्य ही ज्ञात होता है। आहाहा! है?

श्रोता : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी; **सदा।** नहीं कहा यह? अनुभव में सदा और स्वयं, सदा और स्वयं। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में सदा.... स्वयं.... आहाहा! **आने पर भी.... स्वयं ही आने पर भी....** आहाहा! कहते हैं कि ज्ञान की वर्तमान दशा में सदा, स्वयं जानने में आता है — ऐसा होने पर भी, **अनादि बन्ध के वश....** परन्तु अनादि राग के वश.... आहाहा! राग, वह वास्तव में परद्रव्य है, वह स्वद्रव्य नहीं है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में स्वद्रव्य जानने में आता होने पर भी, राग जो परद्रव्य है, उसके साथ (एकपने की) दृष्टि के कारण पर्याय में ज्ञात होते आत्मा को नहीं जानता, उसे नहीं जानता। आहाहा! अद्भुत, भाई!

फिर से, **परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान...** ज्ञानस्वभावी **भगवान आत्मा....** देखो, भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी अनुभव.... **आबाल-गोपाल सबके....**

बालक से (लेकर) वृद्ध, आहाहा! सबको अनुभव में, सबको अनुभव में.... सबको सदा और सबको स्वयं, आहाहा! भाई! यह कोई वार्ता, कथा नहीं; यह तो भगवत् (कथा है)। आहाहा!

आबाल-गोपाल सबको सदा.... सबको और सदा और स्वयं आत्मा ही ज्ञान की पर्याय में जानने में आता है। आहाहा! अरे! ऐसा होने पर भी, **अनादि बन्ध के वश....** परन्तु दृष्टि राग और विकल्प पर है, आहाहा! उसके वश हो जाने से, पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है, फिर भी उसे जान नहीं सकता। आहाहा! राग की एकता की अन्धबुद्धि में पर्याय में ज्ञात होते हुए भगवान को जान सकता है, फिर भी जानता नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। अन्दर है या नहीं? आहाहा!

ऐसा अनुभूति — ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, आबाल-गोपाल को ज्ञान की पर्याय में जानने में आता है। सबको, सदा और स्वयं.... यह आत्मा ही सदा, स्वयं अपनी पर्याय में जानने में आता है। आहाहा! परन्तु अपने स्वभाव की तरफ दृष्टि नहीं होने से और राग के वश होकर, अबन्धस्वरूप जो पर्याय में ज्ञात होता है, वह राग के बन्ध के (वश), रागरूप बन्ध के वश होकर, अबन्धस्वरूप जो पर्याय में जानने में आता है, उसे जान नहीं सकता। आहाहा! क्या कहा? यह तो धीरज का काम है, बापू! आहाहा!

बालक से लेकर वृद्ध सभी आत्मा में जो ज्ञान की पर्याय है, उसमें यह अनुभूति (स्वरूप) भगवान आत्मा ही जानने में आता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, अनादि राग के सम्बन्ध में — यह बन्ध कहो या राग का सम्बन्ध कहो... आहाहा! राग के सम्बन्ध में रुकने से, अबन्धस्वरूप पर्याय में ज्ञात होता है, वह बन्ध में रुकने के कारण, अबन्ध ज्ञात होता है (तो भी) उसे जानता नहीं है। आहाहा!

फिर से, आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप है। वह पर्याय में अज्ञानी को भी, बालक से वृद्ध (सबको) सदा स्वयं आत्मा, वह आत्मा ही पर्याय में अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, अज्ञानी, राग के सम्बन्ध में रुकने से — राग के बन्धभाव में रुकने से, पर्याय में अबन्धस्वरूपी भगवान (आत्मा) ज्ञात होने पर भी, राग के सम्बन्ध में पड़े हुए को वह जानने में नहीं आता। कहो, अन्दर है या नहीं? आहाहा!

नजर तले ऐसी चीज दिखती हो परन्तु नजर और लक्ष्य अन्यत्र होता है तो वह नहीं दिखता है। आहाहा! अरे...! प्रभु! तू तेरी पर्याय में, ज्ञान की एक समय की पर्याय में प्रभु! सदा आबाल-गोपाल को और स्वयं भगवान आत्मा ही ज्ञात होता है। आहाहा! क्या टीका (है)! भरतक्षेत्र में (अजोड़ है)! आहाहा! राग के वश, होकर पर्याय में अबन्धस्वरूप ज्ञान में आता होने पर भी राग के सम्बन्ध में रुकने से अबन्धस्वरूप ज्ञात नहीं होता।

फिर से, आहाहा! भगवान आत्मा, उसकी ज्ञान की पर्याय भले अज्ञान हो, परन्तु उस पर्याय में पर्याय का स्वभाव ज्ञान है न? तो उसका स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। अत: पर्याय में स्वयं आबाल-गोपाल को सदा स्वयं आत्मा ही ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, राग के सम्बन्ध के बन्ध के वश से उस पर्याय में अबन्ध ज्ञात होने पर भी उसे नहीं जानता, राग को जानता है। आहाहा! अरे...! यह बात कहाँ है? बापा! दिगम्बर सन्त हैं। आहाहा! केवलज्ञान का विरह भुलावे — ऐसी बात है। आहाहा! दूसरे को दु:ख लगे कि यह हमारा, यह तुम्हारा एक ही है। बापू! तुम्हारा-हमारा नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

क्या कहा? कि आत्मा, पर्याय में अबन्धस्वरूप है, उस पर्याय में पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से अज्ञानी की पर्याय में भी वह द्रव्य ही जानने में आता है परन्तु अज्ञानी, राग के सम्बन्ध में रुकने से राग को जानता है; जो उसमें है नहीं, उसे जानता है और पर्याय में जो जाननेवाली चीज है, उसे नहीं जानता। आहाहा! कहो, सुमनभाई! वहाँ कहीं ऐसा मिले ऐसा नहीं है। (वह सब) भटकने के मार्ग हैं, बापू! आहाहा! अरे...! इसे सत्य कान में न पड़े, (वह) सत्य को किस प्रकार शोधे? आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप जो पूर्ण अबद्धस्वरूप है... आहाहा! वह तेरी पर्याय में अबद्ध ही स्वयं, सदा, सबको जानने में आता है — ऐसा होने पर भी राग के सम्बन्ध में, बन्ध में वहाँ रुकने से पर्याय में अबन्ध ज्ञात होता है, उसे जान नहीं सकता... आहाहा! ऐसी बात है। चाहे तो भगवान की भक्ति का राग हो, या चाहे शास्त्र की भक्ति का राग हो.. आहाहा! परन्तु वह राग का बन्ध... राग वह बन्ध है (और) भगवान

अबन्धस्वरूप है, तो पर्याय में अबन्धस्वरूप जानने में आता है, स्वभाव ही ऐसा है; पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है, आहाहा! ज्ञान की पर्याय का — अवस्था का त्रिकाली अवस्थायी प्रभु स्वयं जानने में आता है — ऐसा पर्याय का धर्म है, स्वभाव है। ऐसा होने पर भी, राग के सम्बन्ध में रुकने से और राग को जानने से रागरहित चीज पर्याय में जानने में आती है, उसे जानता नहीं... आहाहा! कहो, ऐसी बात है बापू! कठिन बात, भाई! वीतरागमार्ग (अलौकिक है।)

राग की पर्याय में रुकने से वीतराग भगवान आत्मा जिनस्वरूपी... आहाहा! जिनस्वरूपी भगवान आत्मा, उस पर्याय में वह जिनस्वरूप ही ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, जिनस्वरूप से विरुद्ध जो राग — चाहे तो दया-दान-भक्ति-व्रत का कोई भी विकल्प हो... आहाहा! उसे देखने से — बन्ध के वश होकर पर्याय में अबन्धस्वरूप ज्ञात होने पर भी, उसे नहीं जानता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! कितनों को तो यह नयी लगती है। यह समयसार कहीं नया है ? दो हजार वर्ष से तो बना हुआ है। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है न प्रभु!

जहाँ स्वयं सदा पर्याय में — ज्ञान की दशा में जानने में आता होने पर भी लक्ष्य बन्ध (— राग) पर है। राग का विकल्प चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति (का हो परन्तु) राग में ही एकाकार हुआ है, राग को देखता है। राग को देखता है तो पर्याय में अरागी अबन्धस्वरूपी जानने में आता है, उसे नहीं जानता। आहाहा! अरे... ! आहाहा! बहुत ही भरा है, ओहोहो... ! सन्त तो करुणा करके जगत् को आत्मा की प्रसिद्धि करते हैं। भाई! भगवान की प्रसिद्धि तेरी पर्याय में हो रही है परन्तु तेरी नजर राग और पर्याय में रुकने से... आहाहा! उस पर्याय में जानने की शक्ति और जानना होने पर भी, जानता नहीं। आहाहा! यहाँ तो अकेली ज्ञान की क्रिया की बात है।

जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... देखो! **भगवान आत्मा...!** आहाहा! अनन्त... अनन्त... आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी का भण्डार भगवान है। वह **आबाल-गोपाल...** बालक से लेकर वृद्ध सबको... आहाहा! आठ वर्ष का बालक हो... आहाहा! प्रभु! उसकी ज्ञान की पर्याय में वह भगवान आत्मा जानने में आता है। आहाहा!

सबको सदा स्वयं पर्याय में भगवान ज्ञात होने पर भी, अनादि राग के वश होकर राग के ज्ञान में रुकने से, अबद्धस्वरूप का ज्ञान होने पर भी, उसका ज्ञान नहीं करता। आहाहा! ऐसा उपदेश... अन्य तो व्रत करो, तप करो, प्रतिमा ले लो, जाओ! आहाहा! भाई! तेरा नाथ अन्दर महाप्रभु है न! भगवान आत्मा कहा न? भगवान... आहाहा! अज्ञानी का आत्मा भी भगवान आत्मा कहा... आहाहा! भाई! तुझे तेरा पता नहीं, जिसका पता होता है, उसका तुझे पता नहीं, तुझे पता नहीं और राग की खबरों में रुकने से भगवान रुक गया। आहाहा! कहो, युगलजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह समझ में आये ऐसा है, हाँ! भाषा कोई ऐसी कठिन नहीं, भाषा तो सादी है। आहाहा! क्या सन्तों ने काम किया है! आहाहा! आत्मा की प्रसिद्धि... इस टीका का नाम आत्मख्याति है। उस आत्मख्याति की प्रसिद्धि करने पर... आहाहा! पर्याय में आत्मा ज्ञात होने पर भी... क्योंकि पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक होने से... भले तेरी नजर वहाँ न हो परन्तु वह स्वपरप्रकाशक स्वयं जानने में आता है। स्वयं भगवान जानने में आता है। आहाहा! **परन्तु अनादि बन्ध के वश से....** देखो! इस राग के अंश के बन्ध के वश पड़ा है... भगवान आत्मा पर्याय में ज्ञात होने पर भी, राग के अंश के वश पड़ा है। आहाहा!

परद्रव्यों के साथ एकत्व के निश्चय से.... वास्तव में तो यह विकल्प-राग है, वह भी परद्रव्य है, आहाहा! वह स्वद्रव्य नहीं है। भगवान आत्मा... आहाहा! व्यवहार के रसिकों को तो यह ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? भाई! तेरे घर की बात है प्रभु! और तेरा घर तुझे ज्ञात होता है। जानने में आने पर भी तेरी नजर वहाँ नहीं है। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसा है। ऐसा कैसा उपदेश! करना क्या? कुछ हाथ नहीं आता? आहाहा! भाई! करना यह है, पर के — बन्ध का लक्ष्य छोड़कर अबन्धस्वरूपी भगवान ज्ञात होता है, वहाँ नजर डाल! — यह करना है, बाकी तो सब व्यर्थ है। आहाहा!

परद्रव्यों के साथ एकत्व के निश्चय से.... यह क्या कहा? राग और स्वभाव की एकता है — ऐसा मानने से... आहाहा! विभाव का अध्यास हो गया है, इसलिए... आहाहा! **एकत्व के निश्चय से मूढ़-अज्ञानीजन को...** आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा कहा (और यहाँ मूढ़ कहा) आहाहा! भाई! यह तो अमृत का प्रवाह है। आहाहा!

अमृत का सागर भगवान, तेरी पर्याय में भगवान आत्मा सदा स्वयं ज्ञात होता है। प्रभो! यह तेरी पर्याय का स्वभाव है परन्तु तूने अनादि से राग-चाहे तो शुभ हो... आहाहा! गुण-गुणी के भेद के विकल्प में रुकने से... आहाहा! मूढ़ अज्ञानी को **जो यह अनुभूति है वही मैं हूँ...** जाननेवाला ज्ञान मैं हूँ — **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** इसलिए आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

वीतरागस्वरूपी भगवान, पर्याय में ज्ञात होने पर भी, राग के वश हुआ होने से, राग का ज्ञान करने से स्व का ज्ञान रुक गया। आहाहा! राग का, विकल्प का ज्ञान किया, अरे...! शास्त्र के ज्ञान से वहाँ रुक गया। आहाहा! मेरी पर्याय में बहुत शास्त्र का ज्ञान हुआ, आहाहा! भाई! यह शास्त्रज्ञान कोई तेरी चीज नहीं है। आहाहा! परन्तु उसमें रुकने से... आहाहा! वह बन्धभाव है। आहाहा! ज्ञान को वहाँ रोकने से ज्ञान में भगवान ज्ञात होता है, उसे मूढ़ जानता नहीं है। आहाहा!

अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है वही मैं हूँ'... जाननेवाली चीज है, वही मैं हूँ — **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** उसे ऐसा आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता; राग का ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी गम्भीर बातें! साधारण समाज को (ऐसा उपदेश)? परन्तु सत्य हो, वह समाज के समक्ष रखना या असत्य रखना? और समाज आत्मा है या नहीं? प्रभु! भगवान आत्मा है, भाई! ऐसा भगवान आत्मा, पर्याय में ज्ञात होने पर भी, पर्याय में राग में रुकने से... आहाहा! वह (आत्मा) जानने में आता है, उसे मूढ़ ने जाना नहीं है। आहाहा!

ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता... उसे तो राग का ज्ञान हुआ। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु अकेला जाननेवाला, उसका ज्ञान नहीं हुआ। जिसमें वह चीज नहीं है — ऐसे राग का ज्ञान हुआ। आहाहा! तो आत्मज्ञान उदित नहीं हुआ। आहाहा! भगवान! **और उसके अभाव से अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** अज्ञात, जो चीज जानने में नहीं आयी, उसकी श्रद्धा क्या? आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)